भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्‌गम और विकास

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

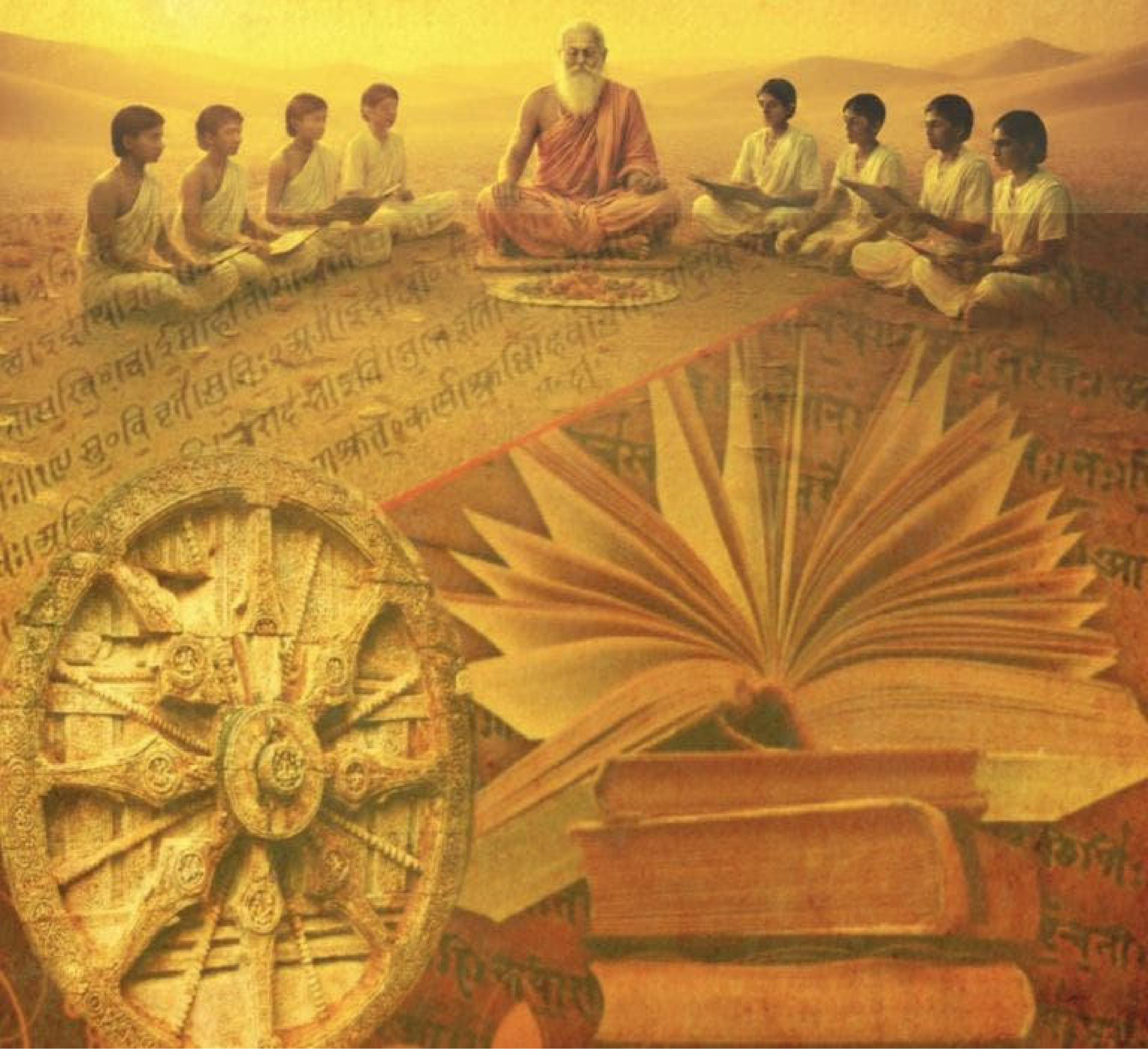

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

10

भारतीय ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ-चतुष्टय

रतनलाल कुमावत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वर्णाश्रम व्यवस्था नामक द्वितीय परिच्छेद में चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों और उनके-अपने धर्मों का विवेचन किया जा चुका है। इन्हीं के समान भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के मूलाधार के रूप में चार पुरुषार्थों की अवधारणा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी गई है। वास्तव में वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक जीवन की संरचना को स्पष्ट करती है, जबकि पुरुषार्थ-चतुष्टय मानव जीवन के उद्देश्यों और आदर्शों को रेखांकित करता है। वर्णाश्रम धर्मों का निरूपण मुख्यत: धर्मशास्त्रों और पुराणों में प्राप्त होता है, परन्तु पुरुषार्थों का स्वरूप सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में, विशेष रूप से दार्शनिक साहित्य में, व्यापक रूप से उपलब्ध है। यह भी स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्रों में धर्म का, अर्थशास्त्र में अर्थ का, कामशास्त्र में काम का और दर्शनशास्त्रों में मोक्ष का प्रधान रूप से विवेचन किया गया है। इस प्रकार भारतीय साहित्य की विविध शाखाएँ जीवन के इन चार लक्ष्यों को अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित करती हैं।

'पुरुषार्थ' शब्द 'पुरुष' और 'अर्थ' के संयोग से बना है। यहाँ 'पुरुष' का तात्पर्य मनुष्य या व्यक्ति से है और 'अर्थ' का अर्थ है प्रयोजन या लक्ष्य। इस प्रकार पुरुषार्थ का अभिप्राय मनुष्य के जीवन-लक्ष्यों से है। भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन के चार प्रमुख लक्ष्य निश्चित किए हैं, जिन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहा गया है। यही चार लक्ष्य शास्त्रों में पुरुषार्थ-चतुष्टय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें धर्म, अर्थ और काम को 'त्रिवर्ग' कहा गया है। त्रिवर्ग का विधान सामान्य मनुष्य के लौकिक जीवन को सुव्यवस्थित करने तथा समाज में स्थिरता और संतुलन बनाए रखने के उद्देश्य से किया गया है। ये तीनों पुरुषार्थ परस्पर सम्बद्ध हैं और एक-दूसरे को मर्यादित एवं नियंत्रित करते हुए जीवन को सार्थक बनाते हैं।

मोक्ष को इन सभी का अंतिम और परम लक्ष्य माना गया है। धर्म द्वारा नियंत्रित अर्थ और काम का सेवन करने वाला व्यक्ति, जो निष्काम कर्मयोग का आचरण करता है अथवा अध्यात्म-ज्ञान से सम्पन्न होता है, वही मोक्ष का अधिकारी बन

सकता है। इस प्रकार मोक्ष केवल संन्यास या विरक्ति का परिणाम नहीं है, बल्कि संयमित, धर्मप्रधान और जागरूक जीवन-व्यवहार का चरम फल है।

त्रिवर्ग की सिद्धि को 'अभ्युदय' कहा गया है, जबकि चौथे पुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि को 'नि:श्रेयस' के नाम से अभिहित किया गया है। संसार में मनुष्य का सर्वांगीण विकास, अर्थात् जीवन के प्रत्येक पक्ष में उन्नति और समृद्धि की प्राप्ति, अभ्युदय कहलाती है। इसके विपरीत नि:श्रेयस वह अवस्था है जिसमें मनुष्य को ऐसा श्रेष्ठतम फल प्राप्त होता है, जिससे बढ़कर और कोई कल्याणकारी उपलब्धि नहीं मानी जाती। यही नि:श्रेयस मोक्ष है, जो जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति और परम शान्ति की प्राप्ति का द्योतक है। इस प्रकार पुरुषार्थ-चतुष्टय भारतीय जीवन-दर्शन में लौकिक उन्नति और आध्यात्मिक उत्कर्ष, दोनों का समन्वित आदर्श प्रस्तुत करता है।

त्रिवर्ग की अवधारणा में विषयिक सुख के उपभोग को 'काम' कहा गया है। काम का स्वरूप यहाँ साध्य के रूप में स्वीकार किया गया है, अर्थात् वह ऐसा लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति मनुष्य अपने जीवन में करना चाहता है। किन्तु यह सुख निरंकुश नहीं है, बल्कि इसके साधन के रूप में धर्म और अर्थ का विधान किया गया है। इस प्रकार साध्य और साधन के पारस्परिक सम्बन्ध से धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थों का सामूहिक नाम त्रिवर्ग कहा गया है। जब इस त्रिवर्ग के साथ चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को जोड़ दिया जाता है, तब यह चतुर्वर्ग या पुरुषार्थ-चतुष्टय कहलाता है। अमरकोश में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः।
सबलैस्तैश्चतुर्भद्रम्॥' **(2.7.57-58)**

इस वचन में त्रिवर्ग और चतुर्वर्ग का उल्लेख करते हुए इन चारों पुरुषार्थों की समृद्ध अवस्था को 'चतुर्भद्र' कहा गया है।

ये चारों पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के सर्वोत्तम और परम उद्देश्य माने गए हैं। व्यवहार में देखा जाता है कि कोई व्यक्ति अर्थ की कामना करता है, कोई काम-सुख की आकांक्षा रखता है और कोई इन दोनों के मूलाधार धर्म को प्रधानता देता है। कुछ ऐसे भी होते हैं जो धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों को समान रूप से स्वीकार करते हैं। सामान्यत: शास्त्रीय परम्परा में इसी समन्वित दृष्टिकोण को मान्यता मिली है। जब मनुष्य विधिपूर्वक त्रिवर्ग का उपार्जन कर लेता है, तब वही उसे अन्ततः मोक्ष की ओर ले जाता है। उस अवस्था में वह चतुर्भद्र से सम्पन्न हो जाता है और उसे सर्वत्र, सदा, सनातन सुख का अनुभव होने लगता है। यही मानव जीवन का चरम और परम लक्ष्य माना गया है।

समभाव से सेवित धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों पुरुषार्थ अपने वास्तविक

स्वरूप में निर्मल और निर्दोष हैं। इनके सम्यक् अनुष्ठान से चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष स्वतः सिद्ध हो जाता है। किन्तु जब इनका उपार्जन करने वाला मनुष्य स्वयं दोषयुक्त होता है, तब यही पुरुषार्थ दूषित हो जाते हैं। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख महाभारत के शान्तिपर्व में मिलता है—

'अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम्।
सम्प्रमोहमलः कामो भूयस्तद्गुणवर्धितः ॥' (123.10)

इसके अनुसार धर्म में फल की अभिलाषा अर्थात् सकामता, अर्थ में निगूहन अर्थात् दान और भोग में उसका प्रयोग न करना, तथा काम में संप्रमोह अर्थात् अत्यधिक आसक्ति—ये तीनों क्रमशः धर्म, अर्थ और काम के मल माने गए हैं।

इन दोषों के निवारण के लिए सूक्ष्मदर्शी और विवेकी पुरुष धर्म का अनुष्ठान सकाम भाव से नहीं, बल्कि निष्काम भावना से करते हैं। वे अर्थ का उपार्जन केवल संग्रह के लिए नहीं, बल्कि त्याग और लोककल्याण के लिए करते हैं, तथा काम का सेवन केवल इन्द्रिय-तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि शरीर के स्वास्थ्य और संतुलन के लिए करते हैं। स्वस्थ शरीर से ही मनुष्य धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों का सम्यक् रूप से आचरण कर सकता है। इस प्रकार निर्मल और निर्दोष त्रिवर्ग के सेवन से चतुर्थ पुरुषार्थ, अर्थात् भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष, अनायास ही सिद्ध हो जाता है। मोक्ष ही सबसे उत्कृष्ट, अक्षय और परम पुरुषार्थ है, इसलिए इसे परम पुरुषार्थ कहा गया है।

शास्त्रीय परम्परा में मानव जीवन को उद्देश्यपूर्ण और संतुलित बनाने के लिए धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों को त्रिवर्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। इन्हें जीवन के उपाय या साधन माना गया है, जबकि चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को उपेय अर्थात् साध्य कहा गया है। जब त्रिवर्ग का अनुष्ठान विधि, मर्यादा और समभाव के साथ किया जाता है, तब मोक्ष की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से हो जाती है। इसी कारण मानव जीवन की वास्तविक सफलता त्रिवर्ग की सम्यक् सिद्धि में निहित मानी गई है। प्रत्येक गृहस्थ को धर्म, अर्थ और काम का यथाविधि एवं संतुलित सेवन करना चाहिए, क्योंकि त्रिवर्ग की प्राप्ति से इस लोक और परलोक—दोनों में अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

त्रिवर्ग के अनुष्ठान में संतुलन अत्यन्त आवश्यक है। इनमें से किसी एक का भी अत्यधिक आग्रह अन्य दो पुरुषार्थों में बाधा उत्पन्न कर सकता है। विशेषतः काम का सेवन इस प्रकार होना चाहिए कि वह न तो धर्म के विरुद्ध जाए और न ही अर्थ में अवरोध उत्पन्न करे, परन्तु विषय-सुख का सर्वथा परित्याग कर जीवन को पूर्णतः सुखहीन बनाना भी शास्त्रसम्मत नहीं है। इसी संतुलित दृष्टिकोण पर कौटिल्य ने बल दिया है और अन्य आचार्यों ने भी धर्म, अर्थ और काम—तीनों के सम सेवन को श्रेष्ठ

माना है।

शास्त्रों में धर्म को त्रिवर्ग का आधार और प्रधान तत्व स्वीकार किया गया है, क्योंकि धर्मात्मा व्यक्ति ही अर्थ और काम पर उचित नियन्त्रण स्थापित कर सकता है। इसी कारण धर्म के प्रतिकूल जाने वाले अर्थ और काम के त्याग का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार धर्मप्रधान और संतुलित त्रिवर्ग के सम्यक् अनुष्ठान से चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष स्वतः सिद्ध हो जाता है।

धर्मशास्त्रीय दृष्टि :

धर्मशास्त्रीय दृष्टि से मनुस्मृति में त्रिवर्ग का विशेष रूप से तथा मोक्ष का सामान्य रूप से विवेचन प्राप्त होता है। मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय के आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया गया है कि राग और द्वेष से रहित होकर जिनका आचरण विद्वान् पुरुष करते आए हैं और जिनका हृदय से अनुमोदन किया गया है, वही धर्म कहलाता है। सम्पूर्ण वेद, वेदवेत्ता मनु आदि की स्मृतियाँ, शील के तेरह प्रकार, उनके द्वारा आचरित सदाचार तथा विकल्प की स्थिति में अपनी रुचि के अनुसार स्वीकार किया गया मार्ग—ये चारों धर्म के आधार माने गए हैं। श्रुति और स्मृति द्वारा उपदिष्ट धर्म का अनुसरण करने वाला मनुष्य इस लोक में कीर्ति तथा परलोक में अनुत्तम सुख प्राप्त करता है। श्रुति का अर्थ वेद से है और स्मृति का अर्थ धर्मशास्त्र से; अतः धर्म की मीमांसा शुष्क तर्क के आधार पर नहीं, बल्कि श्रुति-स्मृति के आलोक में ही की जानी चाहिए, क्योंकि धर्म की उत्पत्ति इन्हीं से मानी गई है।

मनुस्मृति में यह भी स्पष्ट किया गया है कि फल की कामना आदर्श नहीं मानी जाती, किन्तु इस संसार में पूर्णतः कामनारहित व्यक्ति का होना भी सम्भव नहीं है। वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड का अनुष्ठान भी किसी न किसी रूप में कामना से ही जुड़ा हुआ है। काम की उत्पत्ति संकल्प से होती है और यज्ञ, व्रत तथा यम-नियम भी संकल्पमूलक ही हैं। मनुष्य संसार में जो कुछ भी करता है, वह किसी न किसी इच्छा से प्रेरित होता है। शास्त्रोक्त कर्मों का विधिपूर्वक आचरण करने वाला व्यक्ति एक ओर इस लोक में अपनी संकल्पित कामनाओं की पूर्ति करता है और दूसरी ओर अमरलोक की प्राप्ति करता है। साथ ही यह भी बताया गया है कि विषयों के उपभोग से कामना कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृत में दी गई आहुति से अग्नि के समान वह निरन्तर बढ़ती ही जाती है।

अर्थ और काम में आसक्त न रहने वाले व्यक्ति को ही धर्म का उपदेश दिया जाता है। धर्म की जिज्ञासा करने वाले के लिए श्रुति को परम प्रमाण माना गया है। जहाँ किसी विषय में दो प्रकार की श्रुतियाँ उपलब्ध हों, वहाँ दोनों को ही प्रमाण स्वीकार किया जाता है, क्योंकि विद्वानों ने दोनों पक्षों को मान्यता दी है। उदाहरण के

रूप में दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों के अनुष्ठान के समय के विषय में शास्त्रों में विभिन्न मत मिलते हैं—सूर्योदय के बाद, सूर्योदय से पहले अथवा विलम्ब हो जाने पर भी। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को प्रथम दो में से किसी एक पक्ष को अपनी रुचि से स्वीकार कर जीवन भर उसी के अनुसार अनुष्ठान करना चाहिए। यदि कभी कालात्यय हो भी जाए, तब भी अनुष्ठान का परित्याग नहीं किया जाता।

धर्मशास्त्रीय साहित्य में मनुस्मृति का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें अर्थ का स्वतन्त्र रूप से विस्तृत विवेचन नहीं मिलता, फिर भी चारों वर्णों की वृत्ति अर्थात् जीविका के प्रसंग में उसका स्पष्ट संकेत किया गया है। वर्ण-धर्म के अन्तर्गत अर्थ का परिचय पहले ही दिया जा चुका है, इसलिए उसकी पुनः चर्चा आवश्यक नहीं समझी गई है। तथापि त्रिवर्ग से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण कथन मनुस्मृति में विभिन्न स्थलों पर प्राप्त होते हैं, जो मनु की समग्र दृष्टि को स्पष्ट करते हैं।

विद्यादान के प्रसंग में यह निर्देश दिया गया है कि यदि शिष्य में धर्म, अर्थ अथवा शुश्रूषा का अभाव हो, तो उसे विद्याध्ययन नहीं कराना चाहिए। अन्यत्र त्रिवर्ग के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मत प्रस्तुत किए गए हैं। कोई धर्म और अर्थ को कल्याणकारी मानता है, कोई काम और अर्थ को, कोई केवल धर्म को और कोई केवल अर्थ को। इससे यह स्पष्ट होता है कि शास्त्रों में त्रिवर्ग के विविध संयोजन स्वीकार किए गए हैं, किन्तु केवल काम को कहीं भी स्वतंत्र पुरुषार्थ के रूप में मान्यता नहीं दी गई है। इसी कारण काम को कामशास्त्र में तीसरा और अर्थ को अर्थशास्त्र में प्रथम स्थान दिया गया है।

चौथे अध्याय में गृहस्थ की वृत्ति की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि उसे ब्राह्ममुहूर्त में उठकर धर्म और अर्थ—दोनों की चिन्ता करनी चाहिए। साथ ही यह स्पष्ट आदेश दिया गया है कि जो अर्थ और काम धर्म से रहित हों, उनका त्याग कर देना चाहिए। इतना ही नहीं, उस धर्म को भी त्याज्य माना गया है जो भविष्य में सुखद न हो और समाज में निन्दित हो।

वर्णाश्रम धर्म के उपरान्त मनुस्मृति में सम्पूर्ण मानव जाति के लिए दश-लक्षण धर्म का प्रतिपादन किया गया है, जिसे आज नैतिकता के रूप में स्वीकार किया जाता है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये धर्म के दस लक्षण हैं। इनके सम्यक् अध्ययन और आचरण से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है और उसके लिए मोक्षमार्ग प्रशस्त हो जाता है। आगे संक्षेप में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय-निग्रह को चारों वर्णों के लिए धर्म का सार बताया गया है।

अन्तिम अध्याय में वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रिय-संयम, अहिंसा और गुरुसेवा

को नि:श्रेयस अर्थात् मोक्ष के प्रमुख साधन कहा गया है। तप से पापों का नाश और विद्या अर्थात् आत्मज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति बताई गई है। शास्त्र के निष्कर्ष रूप में यह प्रतिपादित किया गया है कि धर्म के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण के साथ शास्त्रानुवर्ती तर्क का सहारा लेना चाहिए, क्योंकि शास्त्र-विरोधी तर्क को कहीं भी मान्यता नहीं दी गई है।

इतिहास की दृष्टि :

इतिहास के आलोक में पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसकी स्वीकृति केवल धर्मशास्त्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि महाकाव्यों और स्मृति-परम्परा में भी इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतरत्न डॉ0 पी0वी0 काणे ने धर्मशास्त्र से सम्बन्धित अपने बृहद् ग्रन्थ के प्रथम भाग में चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा है कि इनमें मोक्ष को परम और अन्तिम लक्ष्य माना गया है, किन्तु उसकी प्राप्ति विरलों को ही होती है और अधिकांश लोगों के लिए वह केवल एक आदर्श के रूप में ही प्रतिष्ठित रहता है। उनके अनुसार काम अन्य पुरुषार्थों से भिन्न कोटि का है और सामान्य या पृथग्जन ही उसे सर्वोच्च पुरुषार्थ मानते हैं।

महाभारत में भी पुरुषार्थों के क्रम और महत्व पर स्पष्ट विचार प्रस्तुत किया गया है। वहाँ कहा गया है कि विवेकी व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम—तीनों की प्राप्ति का प्रयास करता है, किन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो वह धर्म और अर्थ को ग्रहण करता है। यदि किसी एक का ही चयन करना पड़े, तो धर्म को ही सर्वोपरि मानना चाहिए। धर्मशास्त्रकारों ने काम की पूर्णतः निन्दा नहीं की है, बल्कि उसे मानव की क्रियाशीलता की प्रेरक शक्ति स्वीकार किया है, परन्तु उसे धर्म और अर्थ की अपेक्षा निम्न स्थान दिया गया है।

गौतम धर्मसूत्र में धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है और याज्ञवल्क्य स्मृति में भी इसी मत की पुष्टि होती है। आपस्तम्ब ने यह स्पष्ट किया है कि जो काम-सुख धर्म के विरोध में न हों, उनका भोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे मनुष्य को इस लोक और परलोक—दोनों का लाभ प्राप्त होता है। इसी भाव को भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने यह कहकर अभिव्यक्त किया है कि वे स्वयं धर्माविरुद्ध काम हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक और शास्त्रीय परम्परा में पुरुषार्थों का समन्वित, किन्तु धर्मप्रधान स्वरूप स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है।

धर्म का स्वरूप :

धर्म का स्वरूप भारतीय दर्शन में अत्यन्त व्यापक माना गया है। वैशेषिक सूत्र का प्रसिद्ध लक्षण— 'यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म: '—धर्म की प्रकृति को संक्षेप

में स्पष्ट करता है। जिसके द्वारा अभ्युदय और नि:श्रेयस—इन दोनों की सिद्धि हो, वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्नति और ऐहिक-पारलौकिक सुखों की प्राप्ति, जबकि नि:श्रेयस का तात्पर्य उस परम और अक्षय आनन्द से है, जिससे बढ़कर कोई श्रेष्ठ फल नहीं होता। मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण आदि सभी शब्द इसी नि:श्रेयस के द्योतक हैं। विधिवत् आचरित धर्म से इन दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति होती है, इसी कारण त्रिवर्ग में धर्म को प्रथम स्थान दिया गया है।

धर्म की प्रमाणता के विषय में श्रुति और स्मृति को सर्वोच्च माना गया है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म के विविध पक्षों का प्रतिपादन करते हुए वेद को प्रधान प्रमाण स्वीकार किया गया है। मीमांसा दर्शन तथा पुराण-इतिहास परम्परा में भी वेदानुगामी स्मृति, सदाचार और आचार को धर्म के प्रमाण के रूप में मान्यता दी गई है। इस प्रकार प्रमाणों के क्रम में सर्वत्र वेद को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

धर्म के सम्यक् अनुष्ठान के लिए मनु द्वारा प्रतिपादित दस लक्षणों वाले धर्म का शुद्ध चित्त से पालन आवश्यक माना गया है। चित्त की शुद्धि के महत्त्व को छान्दोग्य उपनिषद् में भी प्रतिपादित किया गया है, जहाँ आहार-शुद्धि से सत्त्व-शुद्धि और अन्ततः बन्धनों से मुक्ति की बात कही गई है। इस प्रकार धर्म न केवल अभ्युदय का साधन है, बल्कि नि:श्रेयस अर्थात् मोक्ष का सुनिश्चित मार्ग भी है।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। इनका उद्देश्य मानव जीवन को संयमित, शुद्ध और कर्तव्यनिष्ठ बनाना है।

धृति से आशय धैर्य, संतोष और दृढ़ता से है, जो असफलता में भी कर्तव्यपथ पर टिके रहने की शक्ति देती है। क्षमा अपकार के बदले उपकार की भावना है, जिससे कलह का नाश और कार्यों की सिद्धि होती है। दम मन के संयम का नाम है; इसके बिना मनुष्य काम-क्रोध के वशीभूत होकर पथभ्रष्ट हो जाता है। अस्तेय अर्थात् पराई वस्तु का अन्यायपूर्ण ग्रहण न करना, क्योंकि चोरी से बढ़कर कोई कलंक नहीं है।

शौच बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता है—शरीर की शुद्धि के साथ चित्त की निर्मलता भी धर्म के लिए आवश्यक है। इन्द्रियनिग्रह से विषयासक्ति पर नियंत्रण रहता है और धर्मानुष्ठान में बाधा नहीं आती। धी वह विवेकबुद्धि है जो कर्तव्य और अकर्तव्य का भेद सिखाती है। विद्या आत्मज्ञान है, जो मनुष्य को देह से ऊपर उठाकर धर्म की ओर प्रवृत्त करती है।

सत्य से धर्म की वृद्धि होती है; मन, वचन और कर्म की एकता ही शुद्धता है। अक्रोध क्रोध के अवसर पर भी संयम बनाए रखना है, क्योंकि क्रोध मनुष्य का

सबसे बड़ा शत्रु है और उसे अनुचित कर्मों की ओर ले जाता है। इस प्रकार ये दसों लक्षण मिलकर धर्माचरण को पूर्ण और सार्थक बनाते हैं।

अर्थ का स्वरूप :

'अर्थ' द्वितीय पुरुषार्थ है। जिसके द्वारा इस लोक और परलोक के समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं, वही अर्थ कहलाता है। भोग, आरोग्य और धर्म—तीनों का प्रमुख साधन अर्थ ही है, इसलिए समस्त संसार उसकी ओर प्रवृत्त होता है। चाणक्य के अनुसार समस्त लोक अर्थ के लिए ही कर्म करता है, क्योंकि सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है। इसी कारण कौटिल्य ने त्रिवर्ग में अर्थ को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि वही धर्म और काम दोनों का आधार है।

अर्थ का मूल आजीविका है। भूमि, धन, द्रव्य, विद्या, कृषि, व्यापार, पशुपालन, शिल्प आदि सभी जीविका-साधन अर्थ के अन्तर्गत आते हैं। वात्स्यायन ने गृहस्थी से सम्बन्धित सम्पूर्ण साधनों और मित्र-सम्पत्ति तक को अर्थ में सम्मिलित किया है। महाभारत में कृषि, वाणिज्य और शिल्प जैसे कर्मों को वार्ता कहा गया है, क्योंकि ये अर्थ-प्राप्ति के साधन हैं। वास्तव में संसार कर्मभूमि है और अर्थ ही कर्मों की मर्यादा तथा धर्म-काम की सिद्धि में सहायक होता है।

मनु ने विद्या, शिल्प, सेवा, व्यापार, कृषि आदि को अर्थोपार्जन के साधन बताया है और इनके द्वारा प्राप्त अर्थ से परोपकार तथा धर्मानुष्ठान को श्रेष्ठ माना है। अर्थ का प्रवाह स्वाभाविक रूप से धर्म और काम दोनों की ओर रहता है। जैसे नहर से दोनों ओर खेत सिंचित होते हैं, वैसे ही अर्थ से धर्म और काम पुष्ट होते हैं। इस प्रकार अर्थ धर्म और काम का प्राण है; उसके बिना न तो धर्म सिद्ध होता है और न ही काम सफल होता है।

काम का स्वरूप :

काम तृतीय पुरुषार्थ है। धर्म और अर्थ की भाँति ही काम भी लोकयात्रा के लिए उपयोगी सुख-साधनों का प्रमुख आधार है। काम के बिना प्राणियों की उत्पत्ति, जीवन-निर्वाह और सुख-प्राप्ति सम्भव नहीं है। विषय और इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होने वाली इच्छा को काम कहा गया है। यह चित्त का एक संकल्प है, जिसका कोई दृश्य रूप नहीं होता, परन्तु प्रिय पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होने वाली प्रीति के रूप में इसका अनुभव होता है।

पुरुषार्थ के रूप में काम का स्थान इसलिए है कि शरीर और इन्द्रियों की पुष्टि के लिए इसका सीमित और संयमित सेवन आवश्यक है। किन्तु यदि काम को ही प्रधान मानकर विषयासक्ति में डूब जाया जाए, तो वह दुर्गुण बन जाता है। काम में अति आसक्ति से मनुष्य दुर्व्यसनों में फँसकर पतन की ओर बढ़ता है। इससे चित्त

विषयों में अत्यधिक उलझ जाता है, विवेक और वैराग्य का विकास नहीं हो पाता और तत्त्व-चिन्तन असम्भव हो जाता है। इस प्रकार काम संयम में रहे तो जीवन का सहायक है, और असंयमित होने पर आध्यात्मिक उन्नति में बाधक बन जाता है।

मोक्ष का स्वरूप :

मोक्ष चतुर्थ और परम पुरुषार्थ है। ज्ञानी पुरुष केवल काम ही नहीं, बल्कि धर्म और अर्थ को भी भगवान् को समर्पित कर देता है और इसी समर्पण की स्थिति में मोक्ष की सिद्धि होती है। अधिकांश अविवेकी लोग अर्थ और काम की चकाचौंध में मोक्ष को शुष्क और नीरस मान लेते हैं। उन्हें लगता है कि जहाँ न शरीर रहेगा, न प्रिय विषय, वहाँ आनन्द कैसा होगा। परन्तु वेद-शास्त्र, ऋषि-महर्षि और महापुरुषों का एकमत निष्कर्ष यह है कि संसार के समस्त सुखों से परे, सर्वश्रेष्ठ, अखण्ड और निरवधिक आनन्द मोक्ष में ही है। इसलिए मोक्ष को सभी पुरुषार्थों और सुखों का सम्राट कहा गया है, यद्यपि इसकी प्राप्ति विरले ही भाग्यशालियों को होती है।

संसार मूलतः दुःखमय है और इन दुःखों का मूल कारण अविद्या है। जब तक अविद्या का नाश नहीं होता, तब तक दुःखों का अन्त सम्भव नहीं। अविद्या का नाश केवल विद्या, अर्थात् आत्मज्ञान से ही होता है। जिस विषय का ज्ञान हो जाता है, उसकी अविद्या स्वतः नष्ट हो जाती है—यह अनुभवसिद्ध सत्य है। अतः मुक्ति का प्रधान साधन अध्यात्म विद्या या आत्मज्ञान है। ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं, इसलिए आत्मज्ञान की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है, जिससे मनुष्य के समस्त दुःखों का विनाश होकर मोक्ष की सिद्धि होती है।

निष्कर्षतः पुरुषार्थ-चतुष्टय मानव जीवन के चार सर्वोत्तम उद्देश्य हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म जीवन की नींव है, जो अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। मनु द्वारा प्रतिपादित दस लक्षण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—धर्म का शुद्ध पालन सुनिश्चित करते हैं। अर्थ जीवन की आजीविका और भोग का साधन है, जो धर्म और काम का आधार है। इसका सही उपयोग परोपकार और धर्मानुष्ठान में सहायता करता है। काम विषय और इन्द्रियों से उत्पन्न इच्छा है, जो संयमित होने पर जीवन और शरीर की पुष्टि करता है, किन्तु असंयमित होने पर मनुष्य को दुर्व्यसनों और पतन की ओर ले जाता है। मोक्ष अंतिम और परम पुरुषार्थ है, जो आत्मज्ञान के द्वारा अविद्या का नाश कर स्थायी आनंद प्रदान करता है। त्रिवर्ग का यथाविधि पालन मोक्ष की ओर ले जाता है, जिससे मानव जीवन का चरम लक्ष्य सिद्ध होता है।

☆☆☆